डॉ0 सन्हैयालाल ओझा के उपन्यासों का मूल्यपरक चिन्तन

डॉ0 मीरा अग्रवाल

असि0 प्रोफे0, आई0 एफ0 टी0 एम0 विश्वविद्यालय, लोधीपुर मुरादाबाद

सारांश

डा0 सन्हैयालाल ओझा के उपन्यासों का मूल्यपरक चिन्तन को परम्पराओं तार्किक दृष्टि से हत्तोसाहित किया है। डा0 ओझा ने अपने उपन्यासों के माध्यम से पुरूष और स्त्री के मूल्यों को जागष्त किया है, और उपन्यासों में भाष्य के रूप में नही बल्कि भाव की मूल्यात्मक गहराई को महसूस किया है। कथोपकथन एवं विश्लेषण द्वारा उस बिन्दु का व्यापक चित्रण किया है।

*डा0 ओझा ने बदलते हुए समाज को ही मूल्य चेतना के परिप्रेक्ष्य में अधिक देखा है। अपने मूल्यपरक चिन्तन के विविध पक्षों को उजागर करने के लिए विविध मिजाजों के कथातत्व अपनाये है। **'सम्भवामि'** उपन्यास में तो उन्होंने देवताओं और ऋषिओं के मूल्यहीन आचरणों को पूरी ऊषा के साथ रूपायित किया है। इन्द्र आदि की, भी अभिव्यंजना की है। इस प्रकार डा0 ओझा का मूल्यपरक चिन्तन व्यावहारिक और मानव जीवन तथा समाज के जीवन्त सन्दर्भों को समेटकर चला है।*

मूल शब्दार्थ–

भाष्य	–	*सम्पूर्ण रूप न दिखाना।*
मूल्य	–	*व्यवहारिक चेतन*
परम्परा	–	*लोकहीत*
तर्क	–	*विश्लेषण कर*
अमानवीय	–	*अनैतिक गुण*
पीड़ा	–	*दुःख*

शोध पत्र का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार हैः
डॉ0 मीरा अग्रवाल,
''डॉ0 सन्हैयालाल ओझा के उपन्यासों का मूल्यपरक चिन्तन'
शोध मंथन,
सितम्बर 2017,
पेज सं0 146–149
http://anubooks.com/?page_id=581
Artcile No.20 (SM 458)

डॉ0 सन्हैयालाल ओझा के उपन्यासों का मूल्य परक चिन्तन समाज में नये प्रतिमान स्थापित करने की दशा में एक कदम है। इस चिन्तन में उन परम्पराओं को तार्किक दृष्टि से हतोत्साहित किया गया है जो स्त्री–पुरूष या व्यक्ति–व्यक्ति में फर्क करती हैं। इनमें नैतिंक परम्परा तक सम्मिलित हैं। उनकी दलील से स्त्री पर लगाये गये बंधन इकतरफा होने के कारण औचित्यपूर्ण नहीं है। इस बात को यहां तक कहा गया है कि स्त्री अपनी बुआ को लाकर ससुराल में रखे तो पति उसे स्वीकार कर लेता है, परन्तु वही पत्नी विवाह पूर्व के प्रेमी से गर्भ लेकर आती है तो उसके बच्चे को पति स्वीकार नहीं करता। बुआ और बच्चे में किया गया यह अन्तर चिन्तन को एक अत्याधुनिक दिशा देता है।

डॉ0 ओझा के चिन्तन में मूल्य कोई दिखाने की वस्तु नहीं है। मूल्य–चिन्तन को उन्होंने अपने उपन्यासों में भाष्य के रूप में प्रस्तुत नहीं किया है। परन्तु जहां उन्हें भाव की मूल्यात्मक गहराई महसूस हुई है वहां उन्होंने कथा को विश्राम दिया है तथा कथोपकथन एवं विशलेषण द्वारा उस बिन्दु का व्यापक चित्रण किया है। डॉ0 गोपालराय के इस कथन को उन्होंने चरितार्थ किया है कि उपन्यासकार अपने सहज ज्ञान से नाटक के रूप में प्रस्तुत अपनी कहानी के प्रमुख मोड़ों और व्यवस्थाओं को देखता है। जहां वर्णन रूक जाता है, और पात्रों तथा उनके कार्य व्यापारों पर सीधा प्रकाश पड़ता है '' डॉ0 ओझा ने यह प्रकाश वहीं डाला है जहां या तो मूल्यों के उल्लंघन की अधिकता रही है या मूल्यों की गुणात्मकता की अभिव्यंजना अभीष्ट रही है।

मूल्यों के प्रक्षेपण की जितनी आवश्यकता साठोत्तरी काल में अनुभव की जा रही है, उतनी उससे पूर्व नहीं की गयी थी। इस अंतर को ही स्पष्ट करते हुये डॉ0 गोपालकृष्ण शर्मा ने कहा है कि ''वह भी एक जमाना था कि लोग ललकार कर मैत्री और दुश्मनी करते थे वही गांव है लेकिन इसे समझना मुश्किल हो गया है, शहरों की सी जटिलता यहां आ गयी है।'' डॉ0 ओझा ने बदले हुये समाज को ही मूल्य–चेतना के परिप्रेक्ष्य में अधिक देखा है।

मनुष्य की आधुनिक युग में भौतिकवादी प्रवृत्ति अधिक बढ़ गयी है। वह दूसरे मनुष्य को तभी तक निभाता है जब तक उससे कुछ लाभ की आशा होती है। आज की स्थिति यह है कि मनुष्य भीड़ में रह कर भी अकेलापन महसूस करता है। महानगरों में अजनबीपन की समस्या इसीका परिणाम है। अजनवीपन ''आजकल इसे हेगलीव के बजाय मार्क्सीय तथा अस्तित्ववादी संदर्भों में प्रयुक्त किया जा रहा है, जिसके दो तात्पर्य हैं:

(1) निर्वासन, तथा (2) पदार्थीकरण। पहली एक सामाजिक मनौवैज्ञानिक स्थिति है जिसमें व्यक्ति अपने समाज या समूह या सम्प्रदाय से दूरी अलगाव सा अपनपे के ह्रास का अनुभव करता है और दूसरी स्थिति दार्शनिक है जिसमें व्यक्ति एक पदार्थ या वस्तु हो जाता है तथा अपनी निजता खो बैठता है।'' इसीलिये डॉ0 भरतकुमार ने कहा है कि ''स्वातंत्रयोत्तर काल में हमारे निर्णीत तथा प्रस्थापित मूल्य वर्जित से हो गये हैं'' डॉ0 ओझा का मूल्यपरक चिन्तन इसी मूल्यहीनता की परतें खोलता है तथा वस्तुवादी दृष्टिकोण की बखिया उधेड़ता है। 'माफ कीजिए, मेरी दिलबस्तगी बेजान चीजों में नहीं है। मैं जानदार आदमी हूँ और जानदार आदमियों में ही

दिलबस्ती हासिल करता हँ'' यह जानदार होना मूल्य चेतना को सक्रियता प्रदान करने का द्योतक है। मूल्यपरक चिन्तन जब उपन्यास के पृष्ठों पर उतरता है तो वह पात्रों के चरित्रों के वेश में उतरता है। मूल्यहीन चरित्र भी पाठक को मूल्यों की ही प्रेरणा देते हैं। और इसीलिये डॉ0 ओझा के उपन्यास मूल्यहीनता के चित्रण को विशेष महत्व देते हैं।

डॉ0 ओझा ने अपने मूल्यपरक चिन्तन के विविध पक्षों को उजागर करने के लिये विविध मिजाजों के कथा–तत्व अपनाये है। 'सम्भवामि' उपन्यास में तो उन्होंने देवताओं और ऋषियों के मूल्यहीन आचरणों को पूरी ऊष्मा के साथ रूपायित किया है। इन्द्र आदि की, भी अभिव्यंजना की है। उनका मूल्यपरक चिन्तन देवताओं और मनुष्यों के लिये अलग–अलग मानदंड नहीं मानता। जिस कार्य के लिये मनुष्य धिक्कार का पात्र है, उस कार्य के करने पर उन्होंने देवताओं को भी धिक्कारा है इस उपन्यास में मातिल वाणी से कहता है– ''इन्द्र सभा की शोभा हो न्यारी है, किन्तु आज की यह सभा क्या कोई नृत्य सभा होने दो न। ठाठ तो उसके हैं। जब चाहोगे तभी भीतर भिजवा दूंगा। ऐसी सभाओं में रूप और रस की बरसात करने वाली अप्सरायें नहीं, तप और राख लपेटे ठूंठ और दड़ियल ऋषि होते हैं। उन्हें क्या देखना और क्या सुनना? सूखे ज्ञान की बातें न हुई, तो जली भुनी राजनीति आज की भारतीय नीति की बहन के समकक्ष चित्रित हुई है इस प्रकार यहां भी राजनीति का अवमूल्यन ही अभिव्यंजित हुआ है जो वर्तमान राजनीतिक स्थितियों से पूरी प्रासंगिकता लिये हुये है।

मनुष्य जब आत्मा से कोई चिन्तन करता है तो उसमें मूल्य–चेतना की ही धारा प्रवाहित होती है परन्तु भौतिक हानि–लाभ की गणना करते समय मूल्य–चेतना कुंठित हो जाती है। डॉ0 ओझा ने अमानवीय कृत्यों का जो चित्रण किया है उनके पीछे भी मूल्यपरक चिन्तन की भूमिका है। डॉ0 ओझा जीवन को एक संघर्ष के रूप में ही देखते हैं। ''जीवन क्या है? पीड़ा का संघर्ष और दुख का अभिनय।'' इसे डॉ0 ओझा ने अपने उपन्यासों में उतारा है। (उनका कोई पात्र संकटों या समस्याओं से मुक्त नहीं है। तमसा, रमा, लीला, अजय, महेश्वर, सर्वनाम, आदि सभी का जीवन संघर्षमय है। मनौवैज्ञानिक विश्लेषण इन संकटों की भीतरी तह का खुलासा करते हैं। इस प्रकार डॉ0 ओझा का मूल्यपरक चिन्तन पूर्णतः व्यावहारिक और मानव – जीवन तथा समाज के जीवन्त सन्दर्भों को समेटकर चला है।

आधारग्रन्थ–सूची

1. सिन्धु सीमान्त, डॉ0 सन्हैयालाल ओझा (1967) नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली–7

2. सर्वनाम, डॉ0 सन्हैयालाल ओझा (1974) सरला प्रकाशन, नवीन शाहदरा दिल्ली–32

3. सम्भवामि (प्रथम पर्व) डॉ0 सन्हैयालाल ओझा (1983) हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी

4. सम्भवामि (द्वितीय पर्व) डॉ0 सन्हैयालाल ओझा (1983) हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी

5. मासूम चांदनीः क्षितिज के स्वर, डॉ0 सन्हैयालाल ओझा (1983) हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी

6. तृतीय पुरूष, डॉ0 सन्हैयालाल ओझा, (1985) रचनाकार प्रकाशन, नवीन शाहदरा, दिल्ली – 32

7. धर्म के नाम पर, डॉ0 सन्हैयालाल ओझा, (1992) आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली
8. द्वा सुपर्णा, डॉ0 सन्हैयालाल ओझा, (1998) कादम्बरी प्रकाशन दिल्ली –7
9. कसौटी, डॉ0 सन्हैयालाल ओझा, (2000) नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नईदिल्ली

सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची

1. अनामंत्रित मेहमान, आनंदशंकर माधवन (1961) मन्दार विद्यापीठ, भागलपुर
2. अपराध शास्त्र, एम0एम0 लवानिया व शशी के0 जैन (1989) रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर
3. अनुपूर्वा, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' (1970) विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी
4. अरिस्तु, आनंदशंकर माधवन (1981) भन्दार विद्यापीठ, भागलपुर
5. आठवां स्वर, रामावतार त्यागी, (1958) फ्रैंक ब्रदर्स एण्ड कम्पनी चॉदनी चौक, दिल्ली
6. आधुनिकता और आधुनिकीकरण, डॉ0 रमेशकुन्तल मेघ, (1969) अक्षर प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली
7. आधुनिक कविता में विषय और शैली, रांगेयराघव (1962)
8. आस्वाद के धरातल, धंनजय वर्मा, (1959) विद्या प्रकाशन मंदिर, दिल्ली
9. उखड़े हुये लोग, राजेन्द्र यादव (1975) अक्षर प्रकाशन, दिल्ली
10. उर्दू–हिन्दी शब्दकोश, मुहम्मद मुस्तफा खाँ (1972) हिन्दी समिति, लखनऊ
11. मूल्य–चेतना की दर्ष्टि से, डॉ0 सन्हैयालाल ओझा के उपन्यासों में प्रकाशित